समकालीन सृजन परिदृश्य

डॉ0 रवीन्द्र नाथ मिश्र

इतिहास साक्षी है कि हिन्दी कविता की समृद्ध और सुदृढ़ परंपरा विद्यमान है। यह समसामायिक दबावों एवं हिन्दी प्रदेश के परिवेशगत जीवन के समतल एवं उबड़-खाबड़ जमीन से सिंचित होती रही है। हिन्दी कविता ने वाल्मीकि, कालिदास और भास आदि जैसे अनेक संस्कृत के आचार्यों एवं कवियों की कृतियों को स्रोत एवं प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया। कबीर, तुलसी, बिहारी,घनानंद भारतेंदु, गुप्त, प्रसाद और निराला आदि कवियों ने हिन्दी कविता को अनुभूति और अभिव्यक्ति के धरातल पर एक मजबूत आधार प्रदान किया। आगे आने वाली कवि पीढ़ी को इन कवियों से सशक्त संबल मिला। छायावाद तक की कविता अध्यात्म से प्रभावित थी। इस दौर में कुछ हद तक अध्यात्म और यथार्थ के सामंजस्य के कारण मानवीय मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया धीमी रही। कालान्तर में दोनों के बंधन ढीले होने के कारण एक पक्ष सबल और दूसरा निर्बल होता गया।

नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, अज्ञेय, शमशेर, रघुवीर सहाय, धूमिल, सक्सेना और केदारनाथ सिंह आदि जैसे कई वरिष्ठ कवियों ने प्रगति, प्रयोग और नई कविता की विविध काव्य प्रवृत्तियों के माध्यम से हिन्दी कविता को विभिन्न नई काव्य संवेदनाओं एवं भाषिक संरचना से परिपुष्ट किया। अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' से हिंदी काव्य जगत में एक नये युग का आरंभ हुआ। 1954 में जगदीश गुप्त ने 'नई कविता' शीर्षक से एक संकलन प्रकाशित किया। यहाँ आकर नई कविता की चर्चा प्रगति एवं प्रयोग मिश्रित काव्य प्रवृत्तियों से की गई।

हिन्दी साहित्य में समकालीन कविता का आरंभ सन 1960 के बाद माना जाता है। इसे मोहभंग की कविता का नाम दिया गया। स्टीफन स्पेंडर के अनुसार ``The contemporary belongs to the modern world represents in his work and accepts. The histic forces moving through it.' समकालीन कविता के

दौर में काव्यान्दोलनों की भरमार के कारण कविता की कोई एक खास पहचान नहीं बन सकी। फिर भी पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के समागम से विविध काव्य प्रवृत्तियों से युक्त अच्छी कविताएं लिखी गई। लेकिन जो कविता किसी समय आम जीवन के दिलों की धड़कन थी। वह विशिष्ट पाठक वर्ग तक सीमित रह गई। सन् 70 के बाद धीरे-धीरे कथा साहित्य की पैठ गहरी होती गई और कविता हाशिए पर आ गई।

बीसवीं सदी के अंत तक कविता की दशा और दिशा को लेकर साहित्य जगत में बहसों का सिलसिला शुरू हो गया। हिन्दी पत्रिकाओं ने इस गहराते संकट को महसूस किया। कविता पर चर्चा-परिचर्चा और साक्षात्कारों का आयोजन किया गया। कविताओं के विशेषांक भी प्रकाशित किए गए। फिर भी कविता अपनी मूल पहचान नहीं बना सकीं। दरअसल कविता बौद्धिकता और अभिव्यक्ति की दुरूहता में उलझकर रह गई।

प्रस्तुत लेख में अन्तिम दशक की कविता की उपलब्धि और संभावना के विविध पहलुओं को संक्षिप्त रूप से रेखांकित किया गया है। वस्तुतः दसवें दशक की कविता अपने समय की कविता है। यही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है और पहचान भी। इस क्रम में वह प्राचीन को भी नूतन आयाम देकर अपने समय की बना लेती है। यह सही है कि भौतिक प्रगति ने वाह्य सुख प्रदान कर आन्तरिक सुख को छीना है। समृद्धि के साथ-साथ विषमता, विसंगति, दर्द, पीड़ा और असन्तोष भी बढ़ा है।

इस सदी की कविता पर विचार करने के पूर्व हमें थोड़ी सी चर्चा सातवें-आठवें और नवें दशक की कविता की मूल संवेदना पर कर लेनी चाहिए। सातवें दशक में जो काव्य-आन्दोलन आए उन्होंने नई कविता से इतर भाव एवं विचारों के आधार पर एक नई भाषा को जन्म दिया। यंह विद्रोह या निषेध का दशक माना गया। आजादी के आसपास जो पीढ़ी किशोर थी वह इस दशक में आकर युवा बन गई। राजनैतिक और सामाजिक कारणों से एक ऐसी कविता का सर्जन हुआ जिसने अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी (नई कविता) के भावलोक से अलग हटकर सर्वथा नए ढंग की कविताएं लिखी। इस दशक के प्रमुख कवियों में श्रीकांत वर्मा, कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी, धूमिल, कुमार विकल, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह और श्याम परमार आदि का प्रभाव आगामी कविता पर भी पड़ा।

आठवें दशक में इस कविता के विरोध के स्वर भी परिलक्षित हुए, इसी दशक के प्रारम्भ में जगदीश चतुर्वेदी के संपादन में 'निषेध' का प्रकाशन हुआ। जिसमें सातवें दशक के सभी समर्थ कविओं की चुनी हुई कविताएं प्रकाशित हुई। इस दशक के संबंध में विजयकुमार का कहना है कि "समकालीन कविता की सार्थकता का प्रश्न हमारे आज के मौजूदा-परिवेश और उससे रचनाकार के संबंधों को पुनः परिभाषित करने में निहित है। एक भयावह विषमताग्रस्त समाज में जहाँ नैतिक मूल्यों का ह्रास बहुत तेजी से हो रहा है जहाँ मनुष्य के शोषण और उत्पीड़न को बहुत विकल कर देने वाली सच्चाइयां सामने हैं। जहाँ वर्गों के बीच की सामाजिक-आर्थिक खाई को ढंकने के लिए भोगवाद, जातिवाद और साम्प्रदायिकता को लगातार बढ़ावा दिया जा रहा है। समाज की प्रगतिशील शक्तियों का

नेतृत्व करने वाली मध्यवर्ग और समाज के उत्पीड़ित वर्ग के बीच लगातार फासला बढ़ाया जा रहा हो — कविता की सार्थकता के प्रश्न को आप कहाँ से किस कोण से उठायेंगे? कविता महज एक सुन्दर और महान विचार से रची जाती है अथवा सर्जक और समाज के बीच के रिश्ते को निरंतर जीवंत बनाए रखने से वर्गीय अंतर्विरोधों से भरे समाज में एक कविता को जिलाए रखने के लिए बाहर समाज में चल रहे संघर्षों के समानान्तर क्या कवि का भी अपना कोई अन्तः संघर्ष होता है।''

नवें दशक तक आते-आते कविता की दो खास प्रवृत्तियां दृष्टिगत होती हैं। एक तो जीवन के सामान्य अपने परिवेश से उत्पन्न सुख-दुःखों या घात-प्रतिघातों का अन्तरंग चित्रण। इसे वैयक्तिक ढंग की कविता कहा जा सकता है। दूसरा प्रगतिशील विचारों से युक्त कविताओं का सर्जन। इसी दशक के प्रारंभ में डॉ0 नरेन्द्र मोहन के संपादन में हिन्दी की लंबी कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हुआ जिसमें नागार्जुन, भवानी प्रसाद मिश्र, त्रिलोचन शास्त्री, गिरिजाकुमार माथुर, रामदरश मिश्र, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, जगदीश चतुर्वेदी, नरेन्द्र मोहन और सौमित्र मोहन आदि की प्रमुख लंबी कविताएं संकलित हैं। इसी दौर में नवगीत के नाम से आधुनिक भावबोध के कलात्मक गीतों का सर्जन हुआ। प्रकृति और समाज के विभिन्न परिवर्तनों एवं मनः स्थितियों से युक्त गीतों का एक संकलन तीन भागों में प्रकाशित हुआ। इसका संपादन हिन्दी के प्रतिष्ठित गीतकार शंभुनाथ सिंह ने किया। इसमें संकलित कुछ विशिष्ट कवि हैं — ओम प्रभाकर, माहेश्वर तिवारी, कुमार शिव, अनूप अशेष और बुद्धिनाथ मिश्र आदि।

दसवें दशक के प्रारंभ में राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर कई क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। मंडल-कमंडल की राजनीति ने सम्पूर्ण भारतीय मानवजाति को झकझोर कर रख दिया। दलित और पिछड़ा वर्ग अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने के लिए बेचैन हो उठा। स्त्री अपनी अस्मिता, आर्थिक स्वावलम्बन और राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए उठ खड़ी हुई। साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, भाई-भतीजावाद, राजनीति का अपराधी करण, सूचना प्रौद्योगिकी, मीडिया की अपसंस्कृति आदि का दबाव बढ़ता गया। उदय प्रकाश ने सही लिखा है कि

तकनीक ने छीना चरखा
काल ने छीना माँ
सभ्यता ले गई रस्सी, थाली और धोती
आगे लिखते हैं –
धन्यवाद टेक्नालाजी
कि सबके गए गुजरे कवि को तो दिया ही है
एक टेलीफोन,
कांपती और डरी हुई कभी-कभी आती है
बमियान के पहाड़ों से उसकी आवाज।

भयानक साम्प्रदायिकता वाले दौर के प्रति लीलाधर जगूड़ी का क्षोभ और आक्रोश इस रूप में व्यक्त हुआ है :—

ईश्वर के कपड़े बचाने का मतलब है अपनी खाल बचाना
ईश्वर के जूते नहीं रह गए हैं। मंजन खत्म हो गया है
ईश्वर के चरण उस इलाके में घिसट रहे हैं
जहाँ एक भी आरोग्य पड़े नहीं रह गया है .....

दसवें दशक का समर्थ कवि रोजमर्रा के जीवन में घटते हुए बहुत साधारण से प्रतीत होते प्रसंगों, घटनाओं और दृश्यों के प्रति असाधारण रूप से सजग हो उठा था। उस समय एक ओर यदि आम नागरिक के अमानवीकरण और शोषण की प्रक्रिया को बहुत ठोस, मूर्त और स्थानिक संदर्भों में पहचानने के प्रयास हो रहे थे तो दूसरी ओर इस क्रूर सच्चाई को नियतिवाद के घेरे से निकालकर देखने की कोशिश मात्र की जा रही थी।

दसवें दशक की कविता की काव्यवस्तु पर विचार करें तो उसका मुख्य मुद्दा है साम्प्रदायिकता की समस्या, उग्र हिंदूवाद की लहर का विरोध, फासीवाद, भूमंडलीकरण, कंप्यूटर एवं इंटरनेट का प्रचार-प्रसार, बाजारवाद और उससे फैलता उपभोक्तावाद। दसवें दशक के अंत में दलित और स्त्री विमर्श की चर्चा जोरों से शुरू हुई जो कि आज भी जारी है। इस दशक की कविता पर विचार करने के लिए हमें उसके अतीत पर दृष्टिपात करना होगा। हिन्दी कवियों की एक पुरानी पीढ़ी है जो कि आज भी रचनाकर्म में उसी उर्जा के साथ निरत है। इनके साथ नई पीढ़ी के रचनाकार भी नूतन काव्य संवेदनाओं एवं अभिव्यक्ति से हिन्दी काव्य जगत को समृद्ध कर रहे हैं। यहाँ पर कतिपय पुरानी एवं नई पीढ़ी के कवियों की काव्यकृतियों की सूची प्रस्तुत की जा रही है। रामदरश मिश्र का 'शब्द सेतु' (94), 'बारिश में भीगते बच्चे', केदारनाथ सिंह का 'उत्तर कबीर' एवं अन्य कविताएं (95) और 'बाघ' (96), विश्वंम्भर नाथ उपाध्याय का 'गंगा', कैफी आजमी का 'मेरी आवाज सुनो', जगदीश गुप्त का 'आदिम एकान्त', विश्वनाथ तिवारी का 'आखर अनंत' (91), अशोक वाजपेयी का 'कही नहीं वहीं' (90), 'थोड़ी सी जगह', 'घास में दुबका आकाश' (94), 'समय के पास समय', रमेश चंद्र शाह का 'देखते हैं शब्द भी अपना समय', प्रयाग शुक्ल का 'यह लिखता हूँ', 'बीते कितने बरस' और 'कविता 93', बलदेव वंशी का 'उपनगर में वापसी', 'अंधेरे के बावजूद' और 'वाकगंगा', गिरधर राठी का 'निमित्त' और 'उनींदें की लोरी', गंगा प्रसाद विमल का 'सन्नाटे से मुठभेड़' (94), 'इतना कुछ' (90), कुमार विकल का 'निरूपमादत्त मैं बहुत उदास हूँ' (93), लीलाधर जगूड़ी का 'भय भी शक्ति देता है' (91) 'अनुभव के आकाश में चांद' (95) 'ईश्वर की अध्यक्षता में' (99), राजेश जोशी का 'नेपथ्य में हंसी' (94) और 'दो पक्तियों के बीच' (2000) अरुण कमल का 'नये इलाके में' (96), 'अपनी केवल धार', 'सबूत' (99) मंगलेश डबराल का 'पहाड़ पर लालटेन', 'आवाज भी एक जगह' और 'हम जो देखते हैं' (95), उदय प्रकाश का 'रात में हारमोनियम' 'अबूतर-कबूतर', बोधिसत्व का 'सिर्फ कवि

नहीं' (91), 'हम जो नदियों का संगम है' (2000), महेश आलोक का 'चलो कुछ खेल जैसा खेलें' (2000), निलय उपाध्याय का 'अकेला घर हुसैन का' (94), कटौती (2000), चन्द्रकांत देवताले का 'पत्थर की बैच' (96) और 'उसके सपने' (97), हेमंत कुकरेती का 'चलने से पहले', ओम प्रकाश वाल्मीकि का 'बस बहुत हो चुका' (97), रमेश कौशिक का 'कहाँ है वे शब्द', इब्बार रब्बी का 'वर्षा में भीगकर', 'और लोग बाग', मदन कश्यप का 'नीम रोशनी में', गोरख पाण्डेय का 'स्वर्ग से विदाई' और 'जागते रहो सोने वाले', असद जैदी का 'कविता का जीवन', नीलाभ का 'चीजें उपस्थित है', ए. आर. अरविंदाक्षन का 'घोड़ा', एकान्त श्रीवास्तव का 'मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद', संजय कुंदन का 'कागज के प्रदेश में', भारत यायावार का 'मैं हूँ यहाँ हूँ', लीलाधर मंडलोई का 'रात बिरात', एकान्त श्रीवास्तव का 'अन्न है मेरे शब्द' (94), ज्ञानेन्द्रपति का 'गंगातट', कुमार अंबुज का 'किवाड़' (92), 'क्रूरता' (96) और 'अनंतिम' (98)। आलोक धन्वा का 'दुनिया रोज बनती है' (98), आग्नेय का 'लौटता हूँ उस तक' (97) आदि अन्तिम दशक के महत्वपूर्ण कवि एवं उनके प्रकाशित काव्य संग्रह हैं। कतिपय महत्वपूर्ण नाम छूट गए हैं जो कि अपनी लेखनी से पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से काव्य जगत को समृद्ध कर रहे हैं — कुंवर नारायण, विजयबहादुर सिंह, ललित शुक्ल, विष्णु खरे, वेणु गोपाल, भगवत रावत, विनय दुबे, रोहिताश्व, राजेंद्र शर्मा, पंकज सिंह, स्वप्निल श्रीवास्तव, गगन गिल, देवीप्रसाद मिश्र, संजय चतुर्वेदी, बद्रीनारायण, प्रताप सहगल, सुधीर रंजन सिंह, जीवन सिंह, पंकज चतुर्वेदी, आशुतोष दुबे, नरेश चंद्रकर, और शैलेन्द्र दुबे आदि।

इस दौर की महिला रचनाकारों में अमृता भारती का 'मन रूक गया वहाँ', कात्यायनी का 'इस पौरुष पूर्ण समय में (99) और 'सात भाइयों के बीच चम्पा' (99), अनामिका का 'बीजाक्ष', 'शील' और लाल पंखों वाली चिड़िया, अर्चना वर्मा का 'लौटा है विजेता' (93) निर्मला गर्ग का 'कबाड़ी का तराजू' (2000) और मिथिलेश श्रीवास्तव का 'किसी उम्मीद की तरह (96) आदि के महत्वपूर्ण काव्य संग्रह प्रकाशित हुए।

इनके अतिरिक्त तेजी ग्रोवर, चम्पा वैद, क्षमा कौल, संध्या गुप्ता, विभारानी, संगीता गुप्ता, इंदु जैन, सुनीता जैन और विद्याविंदु सिंह आदि महिलाएं काव्य लेखन में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं।

विनोद कुमार शुक्ल का 'अतिरिक्त नहीं' (2000) इब्बार रब्बी का 'वर्षा में भीगकर (2000), विनोद कुमार श्रीवास्तव का 'एवजी में शब्द' (2000) लीलाधर मंडलोई का 'मगर का एक आवाज' (99) ओम भारती का 'जोखिम से कम नहीं' (99) मदन कश्यप का 'नीम रोशनी में' (2000) निलय उपाध्याय का 'कटौती' (2000) बोधिसत्व का 'हम जो नदियों का संगम है' (2000) प्रेमरंजन अनिमेष का 'मिट्टी का फल' (2001) और संजय कुंदन 'कागज के प्रदेश में' (2001) आदि कवियों की रचनाएं अपने समय से सीधे टकरा रही हैं। अरविंद त्रिपाठी का मानना है कि "आज की अधिकांश कविता अपने वर्तमान को देखने के लिए जिस तरह वर्तमान की सतह पर ही अपना माथा

कूट रही है उसे पता नहीं कि वर्तमान को ठीक-ठीक देखने के लिए अतीत और भविष्य दोनों में झांकना होता है।'' विनोद कुमार शुक्ल की कविता का एक अंश इस प्रकार है —

एक विशाल चट्टान के ऊपर
एक चट्टान इस तरह रखी हुई है
कि अभी-अभी गिरने को है,
यह अभी-अभी गिरने को है पुरातन है
अभी-अभी गिरने को है जैसे शाश्वत है
अभी-अभी गिरने की है एक भविष्य है
पर जो अभी-अभी गिरने को है
कब से कभी नहीं गिर रही है .....

इसमें विनोद कुमार शुक्ल अपनी परंपरा इतिहास की स्मृति में मनुष्य की पहचान करते हैं।

जैसा कि मैंने पहले कहा था कि आजकल दलित विमर्श के साथ-साथ स्त्री-विमर्श की चर्चा जोरों पर है। हालांकि अब नारी-मुक्ति की जिम्मेदारी महिला रचनाकारों ने स्वयं ले लिया है। कथा जगत में इस दायित्व का निर्वाह महिला उपन्यासकार बड़ी बखूबी से निभा रही हैं। इब्बार रब्बी ने भी रोती हुई औरत कविता में नारी के दुःख को बड़ी मार्मिकता से अपना दुख मानकर व्यक्त किया है —

मैं भीग रहा था,
वह रो रही थी,
ढीला हुआ तनाव
चाहकर भी, पोंछ नहीं सका आंसू।

दसवें दशक के अन्तर्गत हो रहे परिवेशगत बदलावों को इस दौर के पुरुष एवं महिला रचनाकारों ने बड़ी ही संजीदगी से अभिव्यक्ति प्रदान की है। कविता किसी विशेष प्रवृत्ति को उजागर न करके बहुआयामी जीवन के विविध क्रियाकलापों की मूल संवेदना को व्यक्त कर रही है।

रीडर, हिंदी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-401206

❑